

प्रेम-प्राप्ति की सुगम साधना

श्रीटहल्यारामजी ने कहा--सूफी सन्त पहले बाह्य रूप में दृष्टि लगाकर मन को एकाग्र करते हैं और उसे इश्क-मिजाजी कहते हैं और मन के पूर्ण एकाग्र हो जाने पर फिर बाह्य रूप को छोड़कर हृदय में ही प्रभु के ध्यान में तन्मय हो जाते हैं । इसको इश्क हकीकी कहते हैं । जैसे सूफी पहले बाहरी रूप को खींचते हैं, इससे मिलता जुलता उपाय वैष्णव मत में क्या है ?

श्रीभक्तकोकिलजी ने कहा- आजकल के चतुर पुरुषों ने जैसे फुहारा बनाया है, जिसकी एक धारा में सैकड़ों महीन धारायें निकलती हैं, वैसे ही रसिक पुरुषों ने भी प्रेम के सूक्ष्म सूक्ष्म रहस्य प्रकट किये हैं । रसिक लोग उन्हें समझते हैं ।

पहले भगवान् के चित्रपट, श्रीविग्रह आदि के श्रीचरण कमलों को देख-देखकर मन में भरना, अंगुलियों पर, नाखूनों पर, तलवे की लालिमा पर, पंजे की रोम राजिपर मन घुमा-घुमाकर, समस्त संकल्पों को मिटा देना यह इश्क-मिजाजी के समान है ।

चित्त के एकाग्र होनेपर अपने हृदयमें प्रभु के रूप, लीला, सेवा समाज में मग्न हो जाना, यह इश्क-हकीकी के समान है ।

इसमें भी सबसे सुगम निःस्वार्थ और मधुर मार्ग है प्रेमियों का दिल खींचना ।

श्रीटहल्यारामजी ने पूछा-“यह प्रेमियों का दिल खींचना

क्या है ?” श्रीभक्तकोकिल जी बोले-“जैसे प्रियतम के प्रेमी, माता-पिता, सखी, सखा, सेवक आदि उनसे प्रेम करते हैं, उनका उनके हृदय का ध्यान करना, उनके हृदय में प्रियतम के लिये कितना प्रेम है, उनके हृदय में प्रियतम के लिये कैसे-कैसे भावों का उद्गार उठते हैं, वे प्रियतम की कैसी सेवा, कैसा लाड़-प्यार करते हैं इसका चिन्तन, स्मरण करना उनके दिल को खींचना है । अपने भाव से स्मरण करने में भी कुछ स्व-सुख रहता है, परन्तु वे प्यार कर रहे हैं, सुख दे रहे हैं, इसमें भाव की गाढ़ता और रस का परिपाक सच्चा होता है । अपनी अयोग्यता और हीनता का संकोच नहीं रहता जैसे वृक्ष के सहारे लता भी ऊपर चढ़ जाती है, वैसे ही रागात्मिका प्रीति से परिपूर्ण प्रेमियों के सहारे साधारण भक्तजनों को भी रागानुगा भक्ति की प्राप्ति हो जाती है । श्रीयशोदा मैया किस लाड़-प्यार से अपने लाड़ले लाल को अपनी गोद में बैठाकर प्यार करती है, कभी सिर सूँघती है, कभी मुख चूमती है, कभी उछालती है, कभी लोरी देती है, कभी पालने में पौढ़ाकर झुलाती है, कभी नन्हें-नन्हें पाँवों को हाथ में लेकर देखती है । उस स्नेहभरे लाड़ को देखकर भक्त का हृदय भी उसी लाड़ प्यार से भर जाता है । ध्यान की सच्ची कुंजी प्रीति ही है । फिर तो प्रियतम के अंग-प्रत्यंग सामने चमकने लगते हैं । सच्चा प्रेम प्रकट हो जाता है । नाम का जप या उच्चारण भी उन अनुरागियों के हृदय को खींचकर ही करना चाहिये, जैसे वात्सल्यभाव में - लाला कन्हैया, ओ ऊधमी, ओ मेरे बाप, मेरी

आँखों के तारे, कहाँ छिपा है ? सख्यरस में, ओ गोपाल, गोविंद, आदि । शृंगार में गोपीजनवल्लभ, बाँके बिहारी, निकुञ्ज विहारी आदि ।’

जैसे नन्दीग्राम में श्रीभरतलालजी श्रीरामचन्द्र के ध्यान में मग्न होकर विकल स्वर से श्रीरामनाम का जप करते रहते हैं । उन्हीं की विकलता, प्यास और स्मरण करके नाम-जप करना चाहिये ।

प्रेमियों के हृदय का प्यार देखने से अपने हृदय में प्यार आ जाता है । फिर तो जीव अनुराग रस रंजित हृदय से युगल के परस्पर अनुराग का चित्र अंकित करने लगता है । हृदय की जितनी जितनी एकाग्रता पवित्रता और प्रियता बढ़ने लगती है उतना-ही-उतना वह युगल के विहार, लीला विलास और सरस चित्त को आकर्षित करने लगता है ।

श्रीप्रियाजी के मन में प्रियतम के प्रति क्या भाव उठते होंगे, प्रियतम के मन में अपनी प्राण-जीवनी श्रीस्वामिनी के प्रति कैसे-कैसे भाव उठते होंगे, वे परस्पर एक दूसरे का ध्यान कैसे करते होंगे, एक दूसरे के सुख, स्वाद, स्वभाव, गुण, भाव, लीला, चरित्र आदि का कैसे स्मरण करते होंगे, किस प्रकार परस्पर एक दूसरे के सम्बन्ध में चिन्तन करने के सिवा और किसी का भी चिन्तन नहीं करते हैं--इन सब बातों को सोचना, विचारना, चिट्ठी पत्री लिखना, गुनगुनाना, भाव में मग्न हो जाना यही सब

प्रेम रस का सुगम मार्ग है ।

मन को प्रतिदिन और प्रतिक्षण ही यह अनुभव है कि जिससे कोई संसारी सम्बन्ध होता है उससे कितना मोह, कितनी ममता होती है और उसका कितना स्मरण चिन्तन होता है । जो लोग प्रियतम से कोई सम्बन्ध निश्चित कर लेते हैं उन्हें प्रेमाकर्षण में बहुत ही सुगमता होती है और अपनी अलग नीरस साधना नहीं करनी पड़ती । आरम्भ से ही मन को प्रेमरसानन्द का अनुभव होने लगता है, इसलिये वह सहज ही इनमें अटक जाता है । साथ ही उन नित्य सहज प्रेमी, समर्थ परिकरों की कृपा भी उन्हें प्रेम प्रदान करती है । यह रसिक पुरुषों की प्रेमगली है । एक फकीर कहता है--

“चल दिल यार की गली में रो आयें,

कुछ तो दिल का गुबार धो आयें ।”

श्रीस्वामीजी के मुखारविन्द से यह वचन सुनकर भक्त कँवरराम साहिब गद्गद् होकर बोले--“सत्य है, सत्य है । यही बात एक फकीर ने भी कही है--

प्रभू का घर बनाना है तो नक्शा ले किसी दिल का ।

बिना गिलास के शर्बत न पी सकोगे सन्दल का ॥

श्रीभक्त कँवररामजी ने भक्तकोकिलजी से पूछा--“श्रीस्वामीजी प्रारम्भ में ही वह नित्य प्रेमियों के उच्च प्रेम को कैसे खींच सकेगा ? क्या इसी रीति से उसकी भक्तिलता परा अवस्था तक

पहुँच जाती है ?”

श्रीभक्तकोकिलजी ने कहा-“शुरु-शुरु में सद्गुरु की शरण में जाकर सेवासे हृदय रूप खेतको शुद्ध करे । फिर सद्गुरु कृपा करके नाम रूप बीज देते हैं । वह शुद्ध हृदय में धीरे-धीरे प्रवेश करता है । जैसे बीज, मिट्टी और पानी के मेल से फूलता फलता और गुलो गुलज़ार होता है, वैसे ही जो अपनी हस्ती मिटा कर दीनता की खाक और प्रेमियों के विरह भाव का स्मरण करके आँसुओं के पानी से नामरूप बीज को सींचते हैं, सत्संग के सुरक्षित कोट के भीतर बाह्यान्तर प्रेमियों के संग से भक्तिलता बढ़ने लगती है । उसमें अनुराग की कोंपलें भाव के रंग बिरंगे फूल और सेवा रूप स्वादु फल लगते हैं । श्रीगुरु परमेश्वर की कृपा से यह भक्तिलता मायिक ब्रह्माण्ड को पार कर विरजा नदी का भी उल्लंघन कर जाती है । यहीं तक दशधा भक्ति की पूर्णता है । यहाँ से दो रास्ते फूटते हैं । यदि अपने विश्राम, आराम, सुख काम का जागरण हो गया तब तो वह ब्रह्मानन्द में डूब जाती हैं; परन्तु जिसके मन में उत्कट उत्कण्ठा जग रही है और जिनकी भक्तिलता का प्रेमफल पाने के लिये स्वयं प्रियतम ललचते-मचलते रहते हैं, उनकी भक्तिबेलि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती-बढ़ती अपने इष्टदेव के धाम में पहुँचकर प्राण-प्रियतम के चरणकमलरूप कल्पवृक्ष से लिपट कर, नित-नये रसमय मधुर फल प्रियतम को चखाती है, ऐसे फल जिनमें गुठली, छिलके या रेशे नाम मात्र भी नहीं होते, केवल रस-ही-रस होता है ।”

इस प्रकार बहुत देर तक भक्तजनों का सत्संग होता रहा । यह मधुर समाज देखकर एक भक्त ने कहा-“यह सत्संग देखकर मुझे तो भाई वसणराम, पारुशाह आदि चार दरवेशों के सत्संग का स्मरण हो रहा है जो रोहिड़ी की ओर एक छोटी सी पहाड़ी पर प्रति दिन होता था । वे सब सन्त सन्ध्या समय परस्पर रोते हुए मिलकर सारी रात सत्संग करते थे और प्रातःकाल रोते हुए अलग-अलग हो जाते थे । आज भी वैसा ही यह चार दरवेशों का मिलन हुआ है ।”

श्रीभक्तकोकिलजी जिन सत्संगी सेवकों को कुटी पर छोड़कर सत्संग के लिये गये थे उन लोगों ने इधर दूसरा ही खेल खेल डाला । वे भगवन्नाम की ध्वनि में मग्न हो गये और जिसके हाथ जो कुछ लगा- थाली, लोटा, कमण्डलु, पीकदानी उसी को उठाकर जोर-जोर से बजाकर नाम संकीर्तन करने लगे । बाहर के लोग भी आ गये । ऐसी तन्मयता हुई कि शरीर की भी सुधि नहीं रही । जब श्रीस्वामीजी कुटिया पर लौटे, तब भी उनकी तन्मयता भंग नहीं हुई थी, बहुत देर बाद जब उन्हें पता चला कि श्रीस्वामीजी आ गये हैं, तब वे सेवा के लिये दौड़-धूप करने लगे । आसन तो बिछाया; परन्तु बहुत सी वस्तुएँ कीर्तन के जोश में टूट-फूट गयीं थी । सेवक सिर नीचा करके खड़े हो गये । श्रीस्वामीजी ने आश्वासन देते हुए कहा-“डरो मत, भगवन्नाम कीर्तन में जो कुछ हुआ वह अच्छा है । बाहरी पदार्थ टूट जाय तो कोई परवाह नहीं, भजन का आनन्द बना रहे ।”

श्रीस्वामीजी का यह क्षमाशील स्वभाव देख कर सत्सं-
गियों को बड़ा आनन्द हुआ । वे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देने
लगे । सन्त भी यह दृश्य देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

गिदूबन्दर के महात्मा श्रीहरिदासरामजी ज्ञान की पंचम
भूमिका में स्थित थे । बन्दर के काटने से उनकी बाँह में जहरीला
घाव हो गया था । डाक्टर ने बाँह काटने के समय क्लोरोफार्म
सुँघाने को कहा, तब महात्मा जी ने मना कर दिया और ध्यान
लगा कर बैठ गये । बाँह काटने को उन्हें भान तक न हुआ । वे
बड़े ही सरल और हँसमुख थे । श्रीभक्तकोकिलजी जब पहली
बार उनसे मिले तब वे बोले--“आपके हृदय से नाम की झंकार
आ रही है । आप तो नाम के आनन्द में मग्न जान पड़ते हैं ।
ब्रह्मानन्दरस-समुद्र में डुबकी लगा कर देखो, जहाँ मन की सब
वृत्तियाँ लय हो जाती हैं । यही सच्चा रस है ।”

श्रीभक्तकोकिलजी ने कहा --“सत्य वचन ! आप कृपा
करके मुझे तो यही आशीर्वाद दीजिये कि नित्य निरन्तर अपने
प्यार इष्टदेव के चरणारविन्द में और नाम में अविचल अनुराग
बढ़ता रहे ।”

महात्माजी ने कहा--“सगुण उपासक भी तो अन्त में ब्रह्मा-
नन्द में ही स्थित होते हैं । उपासना के बाद ज्ञान है । वेद ने भी
प्रभु के निराकारस्वरूप का वर्णन किया है ।”

श्रीभक्तकोकिलजी ने कहा--“ वेद तो हमारे प्यारे भगवान्

के श्वास से प्रकट हुए हैं । इससे तो ईश्वर के सगुण साकार रूप का ही प्रतिपादन होता है । जो वर्णन किया जायेगा वह निर्गुण निराकार का कैसे होगा ? बिना नाम, जाति, गुण और क्रिया के वेद भी किसी का निरूपण नहीं कर सकते । वेद जो निराकार-निराकार कहते हैं वह तो ईश्वर के एक गुण, व्यापकता का वर्णन है । वह व्यापकता रूप धर्म धर्मी ईश्वर के बिना कहाँ टिकेगा ? शक्त के बिना शक्ति कहाँ रहेगी ? ज्योति का आधार तो कुछ-न-कुछ चाहिए । जैसे सूर्य और उसका प्रकाश वैसे ही श्रीरामचन्द्र ज्योतिष्मान् और ब्रह्म उनकी ज्योति है । वेद कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र सच्चिदानन्दघन हैं । उनकी जो मण्डल के समीप गहरी प्रभा है, वह परमात्मा है । योगी उसका ध्यान करते हैं । जो दूसरी पतली प्रभा है वह धूप के समान सब और फैली हुई है । आत्मज्ञानी संसाररूप जाड़े के डर से उसी का मजा लेते हैं । रसिकजन सदा भानुकुल-भानु परमाल्हाद्मूर्ति श्रीरामचन्द्र के पास पहुँच जाते हैं । योगी 'ॐ' ज्ञानी 'सोऽहं' और रसिकजन रसनाकी वेदीपर सरस राम-नाम की ज्योति जगाते हैं । जो ज्ञान अथवा मुक्ति की प्राप्ति के लिए उपासना करते रहते हैं उनके लिए उपासना साधन और ज्ञान साध्य है; परन्तु जो अपने प्राणाराम, नयनाभिराम श्रीराम की आराधना जगत् से उपराम और निष्काम होकर करते हैं, अपने आराध्य देव के अनन्य भक्तिभाव में आमूल-चूल मग्न रहकर प्रियतम की सेवा और सुख के लाख-लाख अभिलाष लिये मस्त रहते हैं । उनको भक्ति ही

ज्ञान से श्रेष्ठ है । रसिक सन्त कहते हैं कि सार असार को जानना ज्ञान है । असार को छोड़ना वैराग्य है । सार का हाथ लग जाना भक्ति है । वचन-रचनाचतुरचूड़ामणि लॉर्ड श्रीकृष्ण हाथ में घोड़ों की रास और चाबुक सम्हाले अपने सखा अर्जुन से कहते हैं-“ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाने पर मेरी भक्ति मिलती है ।” श्रीशंकराचार्य की भी वाणी है-“मुक्त पुरुष भी लीला से शरीर स्वीकार करके भक्ति का स्वाद लेते हैं ।”

श्रीभक्तकोकिलजी के मुख से सगुण साकार भगवान् और उनकी भक्ति की महिमा सुनकर महात्माजी बहुत ही आनन्दित हुए ।

एक बार श्रीभक्तकोकिलजी कराची की यात्रा कर रहे थे । रेलगाड़ी के उसी डिब्बे में एक सज्जन और बैठे थे जिनकी ओर श्रीभक्तकोकिलजी का ध्यान बार-बार खिंच जाता था और सेवक से पता लगवाया तो मालूम हुआ के यह तो बंगाल के

बाबू नन्दलालसेन हैं । सद्गुरु श्रीअविनाशचन्द्रजी की वाणी का स्मरण हो आया और इस आकस्मिक आत्मीयता के उदय से हृदय गद्गद् हुआ, ममता बह निकली । श्रीस्वामीजी ने फल-फूल रख, प्रणाम कर, अपना परिचय दिया और अपने सद्गुरु के सम्बन्ध में बहुत बातचीत की । कर्मयोगी बाबू नन्दलालसेन ने श्रीस्वामीजी को अपने हृदय से लगा लिया और श्रीअविनाश-

चन्द्रजी महाराज की कीर्तिकल्लोलनिधि में श्रीस्वामीजी को सरा-
बोर कर दिया । उस समय श्रीस्वामीजी का हृदयकलानिधि
पूर्णरूप से प्रफुल्लित हो उठा । वे इसी सुयश झूले में झूलते हुए
कराची पहुँच गये ।

महात्मा श्रीनन्दलालसेनजी ब्रह्मसमाज मन्दिर में ठहरे । वे
तत्कालीन ब्रह्मसमाज के नेता थे । दूसरे दिन श्रीस्वामीजी उनसे
मिलने के लिये ब्रह्मसमाज मन्दिर में गये, बड़े प्रेम और शिष्टा-
चार से मिले । उनके कमरे में श्रीलक्ष्मीनारायण और श्रीयुगल-
सरकार के स्वरूपों को देखकर श्रीस्वामीजी ने कहा-“ब्रह्मसमाजी
तो मूर्तिपूजा नहीं मानते ।” इस पर सेनसाहब ने उत्तर दिया-
“वैसा मत तो संकीर्ण विचार वालों का है । वे लोग ईश्वर के
परिपूर्णत्व को नहीं पहिचानते । हमें तो इन चित्रपटों में उसी
दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है ।

श्रीस्वामीजी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और
बोले- “आप सचाई को पूर्ण रूप से पहिचानते हैं । ब्रह्मसमाजी
प्रेम को ही ईश्वर मानते हैं । उनकी यह बात सच्ची है । परन्तु
ह प्रेमगंगा की अमृतमयी धारा किसी श्याममृतसिन्धु से मिलने-
के लिये है । प्रेम और प्रियतम के लाड़लड़ाने में ही प्रेम की महिमा
है । कर्मयोगीजी ने कोई प्रेमपूर्ण पद सुनाने को कहा ।
श्रीस्वामीजी ने यह पद गाकर सुनाया--

लाल तेरे चरनारविन्द मन भावन ।

कहा भयो जो शरीर भयो छिन-भिन, प्रेमजाय तो डरपै तेरो जन ।
सुख-सम्पति माया सिगरो धन, इनमें लम्पटन होय तेरो जन ।
प्रेमकी जेबरी में बांध्यो जनार्दन, कह रविदास अब छुटिबोकवनगुन ।

कर्मयोगी बाबूनन्दलाल सेन को बहुत आनन्द आया ।
श्रीभक्तकोकिलजी ने अपने सद्गुरुदेव को पत्र लिखने के लिये उनसे
पता जानने की इच्छा प्रकट की । श्रीसेनसाहब ने कहा--“ मैं ही
दो-तीन दिन में वहाँ जाने वाला हूँ, लेता जाऊँगा । श्रीस्वामीजी
ने अनुराग में भरकर, श्रीसन्तसद्गुरुदेव के लिये संस्कृत भाषा में
सुयश भरी विनय पत्रिका लिखी । थोड़े दिनों बाद श्रीसद्गुरु-
देव ने एक अपनी रचित पुस्तक भेजी जो श्रीयुगल के चरित्र से
परिपूर्ण थी । उसमें श्रीस्वामिनी जनककिशोरीजू के दिव्य एवं
अद्भुत गुणों का वर्णन था उसे प्राप्त कर श्रीस्वामीजी
सद्गुरुदेव की अत्यन्त कृपा मानकर बहुत हर्षित हुए ।

एक बार श्रीमीरपुर में श्रीभक्तकोकिलजी के प्रेम से थले के
महन्त श्रीकुन्दनदासजी, श्रीटहल्यारामजी, माझाँद के महन्त
बाबा देवीदासजी, हैदाराबाद के बाबा क्षमादासजी आये । सन्तों के
स्वागत में सारा गाँव सजाया गया । जहाँ तहाँ पीने के लिये
शर्बत के प्याऊ बैठाये गये । घर-घर में स्त्री-पुरुष नाच-नाचकर
मंगलगान करने लगे । आस-पास के गाँवों से बड़ी भीड़ जुड़
आयी । एक मेला सा ही लग गया । श्रीभक्तकोकिलजी बचपन-
से ही सन्तों के प्रति अतिशय श्रद्धा प्रीति रखते थे । आज तो
उनके हर्ष-उल्लास का कोई पारा वार ही न रहा । उन्होंने लोगों

को आज्ञादी-सन्तों की सेवा करने में किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं करना । तुम लोगों के पास जा कुछ कला-कौशल, गुण, तन-मन-धन, सर्वस्व है । वह सब सन्तों की सेवा में लगाने का अवसर आ गया है । सब सन्त लोग मान-मर्यादा छोड़कर सन्तों को प्रसन्न करो । सन्तोंके मुखपर प्रसादकी एक रेखा खिंच जाय, यह जीवों के असीम सौभाग्य की बात है ।

यह आश्चर्य देखा गया कि अपने हजारों सेवकों के स्वामी, प्राणधन, हृदय सर्वस्व कोकिलसाईं अपनी ओर बिल-कुल न देखकर सन्तों की सेवा में तन्मय रहते । वे स्वयं ही अपने हाथों परोसकर सन्तों को खिलाते, पत्तल उठाते, सारे काम अपने ही हाथों करते । सभी आने वाले भोजन करते, खुला भण्डारा था । सन्तों के शुभागमन की खुशी में श्रीस्वामीजी सब कुछ लुटा रहे थे । महात्मा लोग श्रीस्वामीजी का दिव्य प्रेम और मीरपुरवासियों की गम्भीर श्रद्धा देखकर बहुत ही आश्चर्यचकित हुए और श्रीस्वामीजी के स्वभाव की साराहना करके आशीर्वाद देने लगे ।

जब सत्संग होता, हजारों नर-नारी जिनमें मुसलमान भी होते, बड़ी एकाग्रता और शान्ति से चन्द्र-चकोर की भाँति कथा-प्रवचन श्रवण करते ।